शिक्षा का अधिकार और प्रचलित बहस

रोहित धनकर

अनवादः एकलव्य नन्दवाना

यदि आपके विद्यालयों में कक्षाएं हैं तो जाहिर है कि उनमें पास-फेल तो किया ही जाएगा। लोकसभा में हाल ही में सरकार ने बच्चों के निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा के अधिकार 2009 (संक्षिप्त में आरटीई) अधिनियम के कुछ प्रावधानों में सुधार लाने हेतु संशोधन पेश किया है। यह विधेयक *''सरकारों को इस बात के लिए सशक्त बनाने का प्रयास करता है कि वे कक्षा पांच या आठ में से किसी एक में या दोनों कक्षाओं में बच्चों को फेल करने या, सम्पूर्ण आरंभिक शिक्षा पूरी होने तक किसी भी कक्षा में फेल नहीं करने से जुड़े निर्णय ले सकें।''*

जैसा कि सर्वविदित है कि देश भर में परीक्षा प्रणाली में सुधार और विशेषकर बच्चों को किसी भी कक्षा में रोकने या न रोकने के मुद्दे पर, एक सतत बहस छिड़ी हुई है। अगर इस बहस के पक्ष और विपक्ष दोनों ही तरफ से सबसे अधिक हो हल्ला मचाने वाली दलीलों पर गौर किया जाए तो अक्सर हम यह सोचने पर मजबूर हो जाते हैं, कि क्या वास्तव में यह सोच समझ कर की जाने वाली चर्चा है या सिर्फ एक भावुक विस्फोट या फिर यह अपने-आपको प्रगतिशील दिखाने के लिए अपनाया गया, बार-बार दोहराया गया एक विचार।

विधेयक के उद्देश्यों को बताते हुए शिक्षा मंत्री कहते हैं कि ''इधर कुछ वर्षों से राज्य व केंद्र शासित प्रदेश, धारा 16 के अंतर्गत आरंभिक शिक्षा के दौरान किसी भी बच्चे को किसी भी कक्षा में ना रोकने के कारण बच्चों के शिक्षण स्तर पर लगातार पड़ते नकारात्मक प्रभाव का मुद्दा उठा रहे हैं'' यह बात ''कक्षा में ना रोकने की व्यवस्था को'' बच्चों के सीखने की असंतोषजन उपलब्धियों का एकमात्र दोषी ठहराती है और ठीक यही बात तथाकथित प्रगतिशील शिक्षाविदों को जोर-शोर से ऐसा कह सकने का मौका प्रदान करती है कि ''बच्चों को अनुतीर्ण करने से सीखने के बेहतर नतीजे नहीं पाए जा सकते'' दोनों ही मतों की सोच में मुख्य मुद्दा गौण हो जाता है। इन चर्चाओं के कारण विद्यालयी शिक्षा में पैदा हुई वे गड़बड़ स्तिथियां ठीक नहीं हो पातीं, जिनको पैदा करने में 'शिक्षा के अधिकार अधिनियम' में ही मौजूद अंतर्विरोधों का भी बड़ा योगदान है।

शिक्षा के अधिकार की धारा 16 (जिसमें तथाकथित रूप से संशोधन की मांग की जा रही है) के अनुसार *''विद्यालय में प्रवेश प्राप्त किसी भी बच्चे को किसी कक्षा में तब तक फेल नहीं किया जाएगा जब तक कि उसकी प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण नहीं हो जाती और ना ही किसी बच्चे को शिक्षा पूरी होने से पहले विद्यालय से निकाला जाएगा।''* इस प्रकार की अपूर्ण योग्यता के पक्ष में जो सबसे ज्यादा लोकप्रिय दलील दी जाती रही है वह यह है कि अनुत्तीर्ण कर देने से बच्चे हतोत्साहित एवं निराश हो जाते हैं तथा अक्सर यह स्थिति बच्चों को विद्यालय की पढ़ाई छोड़ देने को मजबूर कर देती है। यह केवल राजनीतिक रूप से सही वह बाल केंद्रित तर्क है जिसका कि शिक्षणशास्त्र में कुछ भी मूल्य नहीं है। बेशक बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करना चाहिए तथा उन्हें निराश नहीं करना चाहिए। हां किसी भी महत्वपूर्ण शिक्षण शास्त्र में सीखने की इच्छा को

प्रबल रखना तथा बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ाना अत्यंत आवश्यक माना जाता है। और यह भी सही है कि बार-बार अनुत्तीर्ण होकर आगे की कक्षा में ना बैठ पाना जरूर स्कूल 'ड्रॉपआउट' की प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। लेकिन फिर भी इन समस्याओं के ढूंढे गए कारण और उपाय, दोनों ही पूर्णतः त्रुटिपूर्ण हैं। दूसरी तरफ 'कक्षाओं में फेल न करने की नीति' को ही शिक्षा के गिरते हुए स्तर के लिए पूरा जिम्मेदार ठहराना भी उतना ही त्रुटिपूर्ण है। ये दोनों ही दलीलें दोनों ही पक्षों की बहुत ही सतही सोच के उदाहरण हैं।

सीखने की प्रक्रिया में शिक्षक एवं सीखने वाले दोनों की तरफ से संवेदनशील एवं समन्वित प्रयासों की आवश्यकता होती है। यदि विद्यालय, शिक्षा व्यवस्था या शिक्षक यह सोचना आरंभ कर देते हैं कि बच्चों का शिक्षण का स्तर, उनके स्वयं की प्रेरणा, बुद्धि या फिर पारिवारिक पृष्ठभूमि का परिणाम है और शिक्षण की गुणवक्ता से इसका थोड़ा या कुछ भी सरोकार नहीं है तो इसका मतलब तो अपनी जिम्मेदारियों को झाड़कर बच्चों पर थोपना हुआ।

विद्यालयों एवं शिक्षकों को सिखाने के ऐसे तरीके खोजने चाहिए जो कि बच्चों को प्रसन्नचित रखते हुए उन्हें उनकी क्षमताओं के उच्चतम स्तर तक प्रयास करने हेतु प्रोत्साहित करें। बच्चों की यह क्षमताएं गतिशील हैं, बुद्धि को नापने की 'आईक्यू' की संकल्पना की तरह स्थाई नहीं है। और दूसरी तरफ बच्चे को यह ना बताना कि वह अनुत्तीर्ण हो गया है, यह उसे ना बताना कि वह सीखने के अपेक्षित मानकों को प्राप्त करने में असफल हुआ है और हमेशा बच्चों तक यह विचार पहुंचाना कि अगर उन्होंने किसी अवधारणा की कोई नादान समझ भी बनाई है तो भी उनका सीखा हुआ सब कुछ खरा है, सुंदर है, वह रचनात्मकता का प्रतीक है, मानव बुद्धि व मानव उपलब्धियों का सरासर निरादर करना है। शिक्षा शास्त्र एक ऐसी कला है जिसमें सत्य छुपाए बिना नपी-तुली प्रतिक्रिया देने की जरूरत होती है। यदि बच्चा सीखने के अपेक्षित मानक प्राप्त करने में असफल हो जाता है, तो 'सब कुछ ठीक है व अति उत्तम है' कह कर उसे भुला दिए जाने की बेतुकी बातें करने की बजाए शिक्षक को यह बात बच्चे तक पहुंचाने के लिए कोई ऐसा तरीका इजाद करने की आवश्यकता है जिससे कि वह अधिक एकाग्रचित होकर सीखने के लिए प्रेरित हो सके। बच्चों को यह सीखने की जरूरत है कि सोचने, करने व संवेगों को महसूस करने के मानवीय तरीकों के अपने मापदंड होते हैं तथा उन्हें अपनी उम्र के अनुसार इन मापदंडों को प्राप्त करने की आवश्यकता है।

शिक्षकों की तरफ से बच्चों तक यह बात भी पहुंचनी चाहिए कि बच्चे इन मानकों को प्राप्त करने में पूर्णतः सक्षम हैं और कई बार सामान्य स्तर को हासिल करने में असफल होना नई चीज सीखने में पारंगत होने का ही हिस्सा है। या फिर भारतीय परिपेक्ष में बच्चों को उपयुक्त मदद व मार्गदर्शन ना मिल पाना भी इसका कारण हो सकता है। लेकिन यह सोच लिया जाना कि केवल फेल कर देने व उसके बारे में बच्चों को बता देने भर से बच्चे अपनी समस्याएं स्वयं ही सुलझा लेंगे और बढ़िया तरीके से सीखने लगेंगे, यह भी बड़ी बेवकूफी भरी बात होगी। जब तक हम तंत्र में आवश्यक सुधार लाकर शिक्षकों को उपयुक्त शिक्षण शास्त्र के सिद्धांतों को प्रयोग करने के ईमानदार प्रयास करने के लिए तैयार नहीं करते, तब तक बच्चों के सीखने की उपलब्धियों में सुधार नहीं हो सकेगा। इसलिए दोनों ही पक्ष इस संदर्भ में गलत नावों पर सवार हैं।

शिक्षा के अधिकार अधिनियम की वास्तविक समस्याएं

शिक्षा का अधिकार अधिनियम ठीक से विचार नहीं करके बनाया गया अधिनियम है। यह शिक्षा के मूल को नहीं छू पाया है। यह शिक्षा से संबंधित सतही सोच का उदाहरण है। और मेरा यह मानना है (हालांकि मेरे पास इसका कोई पर्याप्त साक्ष्य नहीं है) कि शिक्षा के बारे में इस सतही सोच का कारण किसी प्रकार की राजनीति या राजनैतिक लोग नहीं हैं, बल्कि देश में शिक्षाविदों की शिक्षा के बारे में अनुपयुक्त व भ्रमित समझ है, जो कि उनकी सलाह का आधार बनती है। शिक्षा का अधिकार आरंभिक शिक्षा के बारे में है। किंतु इसमें आरंभिक शिक्षा पूरी करने की परिभाषा बहुत ही अपूर्ण व अपर्याप्त है। आरंभिक शिक्षा को ''कक्षा 1 से 8 तक की शिक्षा'' कहकर परिभाषित किया गया है। ''आरंभिक शिक्षा पूरा होने'' को लेकर कई तरह के अनुबंध हैं जैसे- विद्यालयों के प्रावधानों को लेकर, शिक्षा पूरी होने को लेकर, बोर्ड की परीक्षाएं ना होने को लेकर, बच्चों को किसी कक्षा में फेल न करने को लेकर तथा

ऐसी अन्य कई चीजों के बारे में। और प्रारंभिक शिक्षा पूरी होने की परिभाषा को यह अधिनियम केवल एक पाठ्यचर्या को निर्धारित करने, मूल्यांकन करने, और उसमें अन्तर्निहित सीखने को एक निर्धारित प्राधिकारी द्वारा निर्दिष्ट किए जाने के रूप में देखता है। यदि यह मान भी लिया जाए कि उचित प्राधिकारी प्राथमिक शिक्षा के ऐसे अधिगम स्तर परिभाषित कर भी लेते हैं जिनके अनुपालन से आरंभिक शिक्षा की प्राप्ति को पूरा मान लिया जा सकता है, तब भी यह अधिनियम उन्हें लागू करने की शक्ति उनसे छीन लेता है। यह अधिनियम उन पर पाठ्यचर्या पूरी करने का दबाव बनाता है, पर दूसरी तरफ यह भी दबाव बनाए रखता है कि किसी भी बच्चे को किसी भी कक्षा में, आरंभिक शिक्षा पूरी होने तक रोकना या फेल नहीं करना है। जिसका सीधे तौर से देखा जाए तो यह मतलब निकलता है कि विद्यालय में आरंभ से 14 वर्ष तक की आयु तक रहना ही महज आरंभिक शिक्षा पूरी हो जाने का प्रमाण है। यह तो शिक्षा की संकल्पना की ही बहुत छिछली समझ है। शिक्षा में उपलब्धि निहित है; एक व्यक्ति को तभी शिक्षित माना जा सकता है जबकि उसने ज्ञान, मूल्य एवं कौशलों में एक प्रकार के विशिष्ट मापदंडों को हासिल कर लिया है। अगर कोई उन मापदंडों को हासिल कर लेने का दावा करना चाहता है तो उन ज्ञान, मूल्य एवं कौशलों का आकलन किया जाना जरूरी हो जाता है। और अगर इस तरह का कोई प्रमाण पत्र दिया जाना है जिसकी कि समाज में प्रतिष्ठा है तो इस आकलन का सम्मान किया जाना जरूरी है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम प्रमाणीकरण को सीखने की उपलब्धियों से बिल्कुल अलग कर देता है; और इस प्रकार शिक्षा को सीखने के उपलब्धियों संबंधी पहलुओं से एकदम रिक्त कर देता है। इसके बाद तो शिक्षा में केवल विद्यालय में बिताया हुआ समय ही बचता है। शिक्षा की अवधारणा को पहुंचने वाली इससे बड़ी हानि की कल्पना ही नहीं की जा सकती।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम में दूसरा सबसे बड़ा भ्रम आरंभिक शिक्षा को परिभाषित करने, उसे पूरा करने, उसके ढांचे संबंधी मानकों में व प्रवेश संबंधी नियमों में ''कक्षा'' शब्दा का इस्तेमाल करना है। लेकिन ''कक्षा'' शब्द अपने-आपमें अपरिभाषित बना रहता है, और यही एक बड़ा कारण है कि पास-फेल की व्यवस्था को वापस लाया जा रहा है। कक्षा की संकल्पना का इस व्यवस्था के बिना कोई अर्थ नहीं है।

कक्षा में बच्चों को रोकने या फेल करने की, जरूरत महसूस करना व उसे वापस लागू करने के बारे में सोचना, वास्तव में प्रमाणीकरण की जरूरत से जुड़ा मामला है न कि इस बात से कि इससे बच्चों का सीखना बेहतर हो जाएगा। इससे सिर्फ इतना ही होगा कि जो बच्चे प्रमाण पत्र के लिए आवश्यक सीखने का स्तर प्राप्त नहीं कर सके हैं, उन्हें प्रमाण पत्र नहीं दिया जाएगा। शिक्षा की संकल्पना के क्रियान्वन में उपलब्धि के आयाम को फिर से जोड़ने के लिए यह आवश्यक है। पर सरकार इसे बिल्कुल गलत ढंग से कर रही है।

समस्या की जड़

यह भाग मैं पूरा करने/परिपूर्णता के कष्ट पर लिख रहा हूं, इसलिए जो लोग मेरे विचारों से अवगत है, इसे न भी पढें तो चलेगा। किंतु जो लोग इससे परिचित नहीं हैं उनके लिए इसकी पुनरावृति करना आवश्यक है। जिन्हें इसे विस्तार से जानने की इच्छा है वे इन लिंक पर पढ़ सकते हैं।

हिन्दी में पढ़ने के लिए-

http://www.digantar.org/uploads/shiksha-vimarsh/articles/2017_03_03.pdf

अंग्रेजी में पढ़ने के लिए-

http://www.epw.in/journal/2017/12/perspectives/beyond-oxymoronic-idea-no-detention-policy.html

समस्या की जड़ हमारी भ्रमित सोच में हैं। विद्यालय की संरचना एवं पाठ्यचर्या के बारे में हमारी संकल्पना हमारे समाज की ही तरह कठोर रूप से स्तरीकृत है। हम ऐसे विद्यालय की कल्पना ही नहीं कर सकते हैं जो बच्चों को विभिन्न सोपानिक या बढ़ते क्रम की ऐसी कक्षाओं या वर्गों में विभाजित ना करता हो, जिन्हें वर्ष के अंत में सकल आकलन के आधार पर पास करना होता है। हमारी पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें, समय सारणी, वार्षिक कैलेंडर आदि सब विद्यालय

की इसी संकल्पना से संचालित हैं। बेशक यह ढांचा प्रशासन के लिए फायदे का है और यह चल सकता है। इस संरचना के तहत बहुत अच्छे विद्यालय चलाए जा सकते हैं। बच्चों के प्रति हमेशा कठोर होने की भी आवश्यकता नहीं है।

परन्तु शिक्षणशास्त्र की सोच में दुनिया आगे निकल चुकी है। दुनिया के बहुत से देश जो शिक्षा के क्षेत्र में अच्छा काम कर रहे हैं, ने विद्यालयों की इस अवधारणा को चुनौती देते हुए इसे बदल दिया है। खासतौर पर बाल केंद्रित विचारों के आने से यह विद्यालयी संरचना खराब हो गई है। हम में से कुछ लोगों ने कुछ आकर्षक विचार जैसे सीसीई, किसी कक्षा में पास-फेल न करने की व्यवस्था, गतिविधि आधारित सीखना, आदि लिए हैं व उन्हें हमारे विद्यालय की कठोर सत्तावादी संरचना एवं तंत्र में लागू करने के प्रयास किए हैं। लेकिन विद्यालय की पूरी संकल्पना तथा विद्यालयी शिक्षा में प्रगति तार्किक तौर पर आवश्यक रूप से पास-फेल करने जैसे वार्षिक आंकलन पद्धति पर ही जोर देती है, भले ही वह एक बार में ली गई परीक्षा न हो बल्कि कई सारे मूल्यांकनों का निचोड़ हो। इसलिए मात्र पास-फेल की व्यवस्था को निरस्त कर दिया जाना विद्यालय को उसकी मौजूदा संरचना व संकल्पना में एक अर्थविहीन, उद्देश्य विहीन संस्था बना देगा। इसलिए यह स्वाभाविक है कि हर कोई, खासकर विद्यालयों से संबंधित व्यक्ति पास-फेल की व्यवस्था को वापस लाने का इच्छुक है। शिक्षा का अधिकार अधिनियम व देश में मौजूद शिक्षा पर संवाद इस देश में अभी तक एक ऐसे वैकल्पिक विद्यालय व पाठ्यचर्या की संकल्पना करने में विफल रहे हैं जिसमें पास-फेल करने की अवधारणा का कोई महत्त्व ही न रह जाए क्योंकि वहां सीखना एक स्तर विहीन लगातार चलने वाली प्रक्रिया है।

एक अवसर

हाल ही में सुझाए गए संशोधन के रूप में हमारे पास एक अवसर है कि हम अपनी ऊर्जा बच्चों को पांचवीं और आठवीं का स्तर पूरा नहीं कर पाने की स्थिति में उन कक्षाओं में फेल करने का विरोध करने में न लगाएं, बल्कि हम इस अवसर पर कुछ अन्य प्रकार के प्रश्न पूछें और कुछ अन्य प्रकार की मांगे पेश करें।

उदाहरण के लिए, हम यह मांग रख सकते हैं कि बच्चे को पांचवी व आठवीं में फेल करने के बजाय संशोधन यह होना चाहिए कि उसे 'आरंभिक शिक्षा' या 'प्राथमिक शिक्षा' पूरा करने के लिए अधिक समय दे दिया जाए, यह समय जरूरी नहीं कि साल भर का हो। साथ ही प्राथमिक और आरंभिक शिक्षा पूरी करने की परिभाषा के रूप में सीखने से जुड़ी उपलब्धियां हासिल करना अपेक्षित हो, ना कि किसी प्रकार की कक्षा या वर्गों से गुजरना। इस तरह का अनुबंध लगाया जा सकता है कि सामान्यतः प्राथमिक शिक्षा 5 वर्ष में पूरी कर लेने की उम्मीद है, किन्तु यह अवधि बच्चे की सीखने की उपलब्धियों के आधार पर कुछ कम या ज्यादा भी हो सकती है।

हम यह भी पूछ सकते हैं कि क्या विद्यालय प्राथमिक/आरंभिक शिक्षा के समापन तक कक्षाओं/वर्गों को पूरी तरह से हटा देने के लिए स्वतंत्र हैं? यानी कि एक से पांचवीं तक शायद कोई कक्षा/वर्ग ना हो, केवल विद्यालय में बिताई कुल अवधि तथा सीखने के तय लक्ष्य ही हों। ऐसा ही आरंभिक शिक्षा में भी हो। इससे विद्यालयों को अपने सीखने के समूहों को व्यवस्थित करने और सीसीई को सुचारु रूप से चलाने के लिए पूर्ण रूप से लचीलापन मिलेगा और इससे पास-फेल की अवधारणा भी कम से कम बच्चे के प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने तक निरर्थक साबित हो जाएगी।

किन्तु डगर कठिन है। प्रारंभिक शिक्षा की एक ऐसी समग्र संकल्पना विकसित करने की आवश्यकता होगी, जिसमें संस्थान संबंधी नए सिद्धांतों, व्यापक स्तर पर शिक्षक शिक्षा, प्रशासनिक तंत्र में ठोस परिवर्तनों की आवश्यकता होगी। किंतु यह सब असंभव नहीं है। ◆

लेखक परिचय : अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर एवं अकादमिक विकास के निदेशक हैं और दिगन्तर, जयपुर के संस्थापक सदस्य व सचिव हैं।

संपर्क : rohit.dhankar@apu.edu.in